ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 394-395

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-11, No.-II, Issues-14 YEAR- Dec. -2019

संस्कार–विमर्श

डॉ0 विजय श्रीवास्तव

एसो0 प्रो0–संस्कृत विभाग, गनपत सहाय पी. जी. कालेज सुल्तानपुर (उ0प्र0), भारत

Received- 07.12.2019, Revised- 11.12.2019, Accepted - 14.12.2019 E-mail: -suneetajijrhu@gmail.com

सारांश : *सस्कार शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु में घञ् प्रत्यय करने से निष्पत्र होता है, जिसका अर्थ परिष्कार या शुद्धि होता है। संस्कार से मनुष्य का जीवन निष्पाप, तेजस्वी, उज्ज्वल, प्रतिभाशाली, दिव्य, सर्वसह, आनन्दमय और निष्कलंक बनता है। जैसे सुवर्ण अग्नि में पड़कर चमकदार और कान्तियुक्त हो जाता है, वैसे ही संस्कारों से स्त्री–पुरूष, बालक–बालिकायें चमक उठते हैं। संस्कारित जीवन ही मनुष्य को आदरणीय और पूज्य बनाता है। संस्कार संशुद्धि का श्रेष्ठतम माध्यम है। संस्कार से ही बालक का जीवन गर्भदोष, रजःदोष, वीर्यदोष और प्रकृतिज दोषों से मुक्त होकर ब्रह्मतत्व प्राप्ति के योग्य बनता है।*

भारतीय संस्कारों की यह प्रक्रिया शिशु के गर्भ में आगमन से ही आरम्भ हो जाती है। संस्कारों की सुदीर्घ परम्परा में अधिकतर संस्कार बाल्यकाल में ही सम्पन्न हो जाते हैं। वस्तुतः यह वैज्ञानिक दृष्ट्या प्रमाणित तथ्य है कि बाल्यकाल ही वह अनगढ़ी मृत्तिका होती है जिसे संस्कारों के सांचें में ढाल कर शास्त्रोचित स्वरूप प्रदान किया जा सकता है।

कुंजीभूत शब्द– सहभागिता, भागीदारी, सकरात्मक, रूढिवादिता, सामाजिक, असमानता, राजनीतिक ।

सर्वसामान्य जीवन में प्रतिदिन हम देखते हैं कि एक ही परिवार से, एक ही माता–पिता के, एक ही वातावरण में निवास करने वाले, एक ही खानपान वाले दो बालकों की प्रवृत्तियों में विशेष असमानतायें होती हैं। यह केवल जन्म जन्मान्तर के संस्कारों का प्रभाव है।

सर्वदा ध्यातव्य है कि यह संस्कार शरीर के सौन्दर्य के लिए नहीं है अपितु आत्मा के अभ्युदय के लिए होते हैं। जिस प्रकार स्वच्छ काँच दीपक की ज्योति को प्रभाववान बनाता है, जबकि कालिमायुक्त काँच प्रकाश को धुँधला और धीमा प्रतीत कराता है, उसी प्रकार विविधि संस्कारों से संस्कृत मनुष्य का पंचतत्वनिर्मित शरीर आत्मिक विकास में सहायक होता है। यद्यपि इन संस्कारों का उदय वैदिक काल में हो गया था परन्तु पूर्ण वैज्ञानिक विकास उस समय नहीं हो पाया था, फलतः वैदिक काल में इसका उल्लेख कम मिलता है। जीवन के विकास के साथ साथ संस्कारों का महत्व भी वैज्ञानिक होता गया। आध्यात्मिक भावना को ग्रहण योग्य बनाने के लिए न केवल बाल्यकाल अपितु उससे भी पूर्व गर्भावस्था से ही एकादश इन्द्रियों का परिष्कार एवं संस्कार परमावश्यक है।

यद्यपि इन संस्कारों की उपयोगिता के विषय में सभी विद्वान् एकमत हैं परन्तु इनकी संख्या एवं क्रम के विषय में पर्याप्त मतभेद हैं।

गौतम	– 40
वैखानस	– 10
अंगिरा	– 25
व्यास	– 16
आश्वलायन	– 11
पारस्कर	– 13

मनु याज्ञवल्क्य, विष्णु–धर्म सूत्र में संस्कारों की कोई संख्या नहीं दी है प्रत्युत निषेक (गर्भाधान) से श्मशान (अन्त्येष्टि) तक के संस्कारों की ओर संकेत किया है।

गर्भाधान संस्कार भारतीय भावना की विकसित परम्परा का द्योतक है। शिशु के गर्भ रूप में विकसित होने से पूर्व पुरूष द्वारा स्त्री में बीज स्थापित करने पर यह संस्कार सम्पन्न किया जाता है। गर्भाधान की रात्रि संख्या के आधार पर ही पुरूष संतति, स्त्री संतति, बुद्धिमान, मूर्ख, वीर अथवा धार्मिक आदि गुणों का शिशु में निर्धारण होता है।

पुंसवन संस्कार गर्भाधान के पश्चात् होता है। इसके अनुष्ठान से पुन्पुमान (पुरूष) सन्तति का जन्म होता है। सम्भवतः युद्धों में पुरूषों की महती आवश्यकता के कारण ही माता पुरूष सन्तति की अधिक कामना करती है। यह संस्कार गर्भ के गतिमान होने से पूर्व सम्पन्न किया जाता है।

सीमन्तोन्नयन संस्कार का मुख्य प्रयोजन माता के ऐश्वर्य एवं अनुत्पत्र शिशु के दीर्घायुष्य की उपलब्धि थी। पाँचवें मास में गर्भस्थ शिशु का मानसिक विकास प्रारम्भ हो जाता है अतः इस अवसर पर गर्भिणी स्त्री को बहुत ही प्रसन्न रखना चाहिए। इस अवसर पर पति अपने हाथों से पत्नी के सीमन्त (केशों) का संस्कार (श्रृंगार) करता है। ..... वां गृ0 सूत्र 1/10/7 . .... याज्ञवल्क्य ने एक स्थल पर कहा है कि इस संस्कार में प्रति को गर्भिणी की इच्छाओं की पूर्ति का पूर्ण प्रयास करना

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-11, No.-II, Issues-14 YEAR- Dec. -2019

चाहिए अथवा यदि उसको कुछ मानसिक वेदना हुई, तो उसके गर्भ के गिर जाने की सम्भावना भी होती है। .....याज्ञ0 स्मृ0 3/89.....

जात कर्म संस्कार उस समय होता है जब माता आसन्न प्रसवा होती है। इस संस्कार में सर्वप्रथम सुरक्षित प्रसूति गृह का चयन किया जाता है जो नैऋत्य दिशा में होना चाहिए (नैऋत्या सूतिका गृहय्)। प्रसूति गृह में अग्नि, जल, यष्टि, दीपक, शस्त्र, सरसों आदि वस्तुयें रखी जाती थीं जो अत्यन्त वैज्ञानिक हैं। यह संस्कार नाभिबन्धन के पूर्व सम्पन्न होता है। सर्वप्रथम पिता एक सुवर्ण शलाका से शिशु को मधु घृत चटाता है। तत्पश्चात् बल सम्वर्धन के लिए प्रार्थना करता है। नाभि की मुण्डी पृथक् कर शिशु को स्नान एवं माता का स्तनपान कराया जाता है। सूतिका गृह के द्वार पर स्थायी रूप से अग्नि स्थापित की जाती है।

नामकरण संस्कार बालक की सामाजिक चेतना के विकास का द्योतक है। बालक का नामकरण उस प्रकार से होना चाहिए जिसमें उसकी सौम्यता, दृढ़ता आदि बाहय एवं आन्तरिक प्रवृतियाँ अन्तर्निहित हों। ग्रहय सूत्रों के सामान्य नियमानुसार नामकरण संस्कार बालक के जन्म के 10वें अथवा 12वें दिन सम्पन्न होता है।

निष्क्रमण संस्कार में बालक को विधि विधानपूर्वक अलंकृत कर कुल देवता के समक्ष लाया जाता है। निष्क्रमण के समय पिता निम्नलिखित श्लोक पढ़ता है :–

अप्रमत्तं प्रमतं वा दिवा रात्रावथापि वा रक्षन्तु सततं सर्वे देवाः शक्र पुरोगयाः (विष्णु धर्मोत्तर) बालक को अन्न खिलाना उसके जीवन का दूसरा सोपान है। सुश्रुत शरीरस्थान (10.64) में कहा गया है कि 6 मास के बालक को अन्न खिलाना उसके विकसित स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। इसके पूर्व तक माता का दुग्धपान ही बालक के लिए उपयुक्त है। नियमित समय पर माता का स्तनपान बन्द करना एवं शिशु को उचित भोजन देना, माता एवं शिशु दोनों के लिए वैज्ञानिक एवं हितकर है। चूड़ाकरण संस्कार बालक के जन्म के पश्चात् प्रथम वर्ष के अन्त में अथवा तृतीय वर्ष की समाप्ति के पूर्व होता है। परवर्ती ग्रन्थों में यह समय 5 से 7 वर्ष तक ही माना गया है। शुश्रुत का कथन है कि मस्तिष्क के भीतर ऊपर की ओर एक ऐसा अंग विशेष है जिस पर किसी प्रकार का आधात लगने पर तत्काल मृत्यु हो जाती है (शरीर स्थान 6.83)। अतः इस संस्कार के द्वारा उसी अंग पर शिखा रखने का विधान किया गया है जिसके द्वारा बालक की बुद्धि का विकास एवं मानसिक वृद्धि भी होती है।

बालक को आचार्य के पास ले जाना उपनयन कहलाता है। यह संस्कार उसका द्वितीय जन्म माना जाता है। ग्रहय सूत्रों एवं परवर्ती आचार्यों के अनुसार ब्राह्मण का उपनयन 8वें वर्ष, क्षत्रिय का 11वें वर्ष एवं वैश्य का 12वें वर्ष में करना चाहिए। (मनुस्मृति 2/36)

बालक का केशान्त संस्कार 16 वर्ष की आयु में सम्पन्न होता है। यह यौवन के पदार्पण का सूचक है। इस समय में बालक के शरीर एवं मन मस्तिष्क में विशेष यौवनजनित परिवर्तन आ जाते हैं जिनके नियमन के लिए इस संस्कार की आवश्यकता होती है। दाढ़ी और मूछों के क्षौर के बाद बालक को एक वर्ष का कठोर संयम एवं ब्रहमचर्य का पालन करना पड़ता था।

समावर्तन संस्कार ब्रह्मचर्य समाप्त होने पर किया जाता है। यह विद्यार्थी जीवन की समाप्ति एवं पूर्णता का सूचक संस्कार है। इसका शाब्दिक अर्थ है वेदाध्ययन के अनन्तर गुरूकुल से घर की आर आना। गृहस्थ जीवन में प्रवेश का यह अवसर युवक के लिए नितान्त संवेदशील एवं अनिवार्य होता है।

विवाह स्वयं एक यज्ञ होता है। इसलिए जो व्यक्ति बिना पत्नी के होता है उसको अयज्ञिय कहते हैं (तै0 ब्रा0 2/2/2/6)। समावर्तन संस्कार के पश्चात् विवाह संस्कार सम्पन्न किया जाता है।

इस प्रकार विविध संस्कारों से सम्पन्न होता हुआ युवक शतायु होता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मनुस्मृति
2. याज्ञवलक्य स्मृति
3. विष्णु धर्मोत्तर पुराण
4. बौधायन गृह्यसूत्र
5. आश्वलायन श्रौतसूत्र
6. सुश्रुत संहिता
7. तैत्तिरीय ब्राह्मण

*****